

शास्त्रसार समुच्चय

—जैन धर्म एवं दर्शन का संक्षिप्त विश्वकोश

समीक्षक : डॉ० मोहन चन्द

आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज के द्वारा माघनन्दाचार्य कृत 'शास्त्रसार समुच्चय' की कन्नड़ टीका का हिन्दी अनुवाद एवं विशेष व्याख्या का कार्य श्रुतज्ञान के प्रसार की भावना से अनुप्रेरित है। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि जैन परम्परा के अनुसार आचार्य द्वारा पालनीय पंचविध आचारों में 'ज्ञानाचार' को प्रमुख स्थान दिया गया है जिसके अनुसार स्वयं स्वाध्याय में प्रवृत्त होना तथा अन्य को स्वाध्याय में प्रवृत्त कराना आचार्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दायित्व स्वीकार किया जाता है —

“पंचविधे स्वाध्याये वृत्तिर्ज्ञानाचारः ।” (मूलाराधना, ४१६ गाथा पर विजयोदया टीका)

जैन धर्म-संघ के इतिहास में श्रुतज्ञान के संरक्षण का कार्य आचार्य वर्ग ही करता आया है। प्रत्येक युग में धर्माचार्य ही तीर्थंकर के मुख से निस्सृत वाणी को जन-साधारण तक पहुंचाते आए हैं। प्राचीन अवधारणाओं को युगानुसारिणी मूल्यों के अनुसार प्रस्तुत करने की सदैव अपेक्षा रहती है जिसके सर्वाधिक आप्त प्रमाण 'आचार्य' ही होते हैं। इस सम्बन्ध में हरिवंशपुराण का स्पष्ट कथन है कि आगम तन्त्र के मूल कर्ता तीर्थंकर वर्धमान थे। उत्तर तन्त्र के प्रणेता गौतम गणधर थे तथा उत्तरोत्तर आगम तन्त्र का विकास आचार्य-वर्ग द्वारा हुआ जो एक प्रकार से सर्वज्ञ की वाणी के अनुवादक ही हैं—

तथाहि मूलतन्त्रस्य कर्ता तीर्थंङ्करःस्वयम् ।

ततोऽप्युत्तरतन्त्रस्य गौतमाख्यो गणाग्रणीः ॥

उत्तरोत्तरतन्त्रस्य कर्तारो बहवः क्रमात् ।

प्रमाणं तेषां नः सर्वे सर्वज्ञोक्त्यनुवादिनः ॥ (हरिवंश पुराण १.५६-५७)

जैन धर्माचार्यों की उपर्युक्त मर्यादाओं के सन्दर्भ में आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज द्वारा 'शास्त्रसार समुच्चय' का अनुवाद कार्य भी ज्ञान के निर्मल सरिता प्रवाह से आधुनिक जनमानस का किया गया पवित्र अभिषेक है। दूसरे शब्दों में इस धर्मप्राण 'शास्त्रसार समुच्चय' की सक्षम अनुवादपरक अभिव्यक्ति के माध्यम से आचार्य श्री ने स्वानुभूति एवं आत्मज्ञान से सम्बन्धित गम्भीर सत्यानुसन्धान का उद्घाटन किया है। आचार्य श्री द्वारा स्वयं इस ग्रन्थ की उपादेयता को इन शब्दों द्वारा अभिव्यक्त किया गया है—“भगवान् महावीर का शासन विश्व-व्यापी हो, मानव-समाज दुर्गुण, दुराचार छोड़कर सन्मार्गगामी बने और विश्व की अशान्ति दूर हो हमारी यही भावना है।”

(आलोच्य संस्करण, पृ० ख)

जैन परम्परा के अनुसार श्रुतज्ञान की जो निर्मल एवं सारस्वत धारा समय-समय पर आचार्य वर्ग के माध्यम से प्रवाहित होती आई है उसी का अनुसरण करते हुए शास्त्रसार समुच्चय के रचयिता ने अपने ग्रन्थ को मुख्यतया चार अनुयोगों में विभाजित किया है—

१. प्रथमानुयोग २. करणानुयोग ३. चरणानुयोग, तथा ४. द्रव्यानुयोग ।

१. प्रथमानुयोग—प्रथमानुयोग में शास्त्रीय मान्यता के अनुसार ६३ शलाका पुरुषों एवं परमार्थ ज्ञान की चर्चा आती है—

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानां चरितं पुराणमपिपुण्यम् ।

बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः । (रत्नकरण्ड श्रावकाचार, ४३)

शास्त्रसार समुच्चय के प्रथमानुयोग में जैन श्रुतज्ञान से सम्बन्धित काल के भेद, कल्पवृक्ष, चौदह कुलकर, सोलह भावना, चौबीस तीर्थंकर, चौतीस अतिशय, पांच महाकल्याण, चार घातिया कर्म, अठारह दोष, ग्यारह समवशरण भूमि, बारह गणधर, बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव, नौ नारद, ग्यारह रुद्र आदि का वर्णन आया है।

आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज ने प्रथमानुयोग सम्बन्धी तत्त्व चर्चा को जनसाधारण की दृष्टि से अत्यन्त सरल एवं सहज शैली में समझाने का प्रयास किया है। सूत्र एवं उस पर की गई टीका तो मात्र सन्दर्भ बनकर रह गए हैं। आचार्य श्री के विशेष कथनों एवं व्याख्या-

परक चर्चाओं से तत्त्व ज्ञान सरस एवं धर्मानुप्राणित बन गया है। यह तथ्य कतिपय उदाहरणों से विशद किया जा सकता है। उदाहरणार्थ शास्त्रसार समुच्चय का एक मूल सूत्र 'चतुर्विंशतिस्तीर्थकराः' को ही लें जिसमें केवल चौबीस तीर्थकरों का निर्देशमात्र आया है तथा इस सूत्र की कन्नड टीका ने भी कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला है परन्तु आचार्य श्री ने इस सूत्र के विशदीकरण को लगभग ३५ पृष्ठों में प्रस्तुत किया है जिनमें तीर्थकरों के समग्र इतिहास और उनसे सम्बद्ध देवशास्त्रीय मान्यताओं के पूरे विवरण उपलब्ध हैं। विविध तीर्थकरों के अनेक भवों उनकी तप-साधनाओं को अत्यन्त व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया गया है। तीर्थकर पार्श्वनाथ के विविध भवों और उनसे द्वेष रखने वाले कमठ के जीव के ऐतिहासिक वृत्त को समझाने में आचार्य श्री ने कथा शैली का उपयोग किया है। इसी प्रकार तीर्थकर वर्धमान महावीर के पूर्व भवों का विस्तृत वर्णन करने के उपरान्त उनकी केवल ज्ञान प्राप्ति तक की घटनाओं को अत्यन्त सुन्दर ढंग से समझाने की चेष्टा की गई है।

तीर्थकर सम्बन्धी चर्चा के अन्तर्गत महाराज श्री ने यह विशेष रूप से निर्दिष्ट किया है कि वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर बाल ब्रह्मचारी थे तथा कुमारावस्था में ही इन्होंने मुनि दीक्षा ली थी। आचार्य श्री ने आवश्यकनिर्युक्ति नामक श्वेताम्बर ग्रन्थ का उदाहरण देकर यह पुष्ट करने की चेष्टा की है कि श्वेताम्बर आगम परम्परा में भी महावीर, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, मल्लिनाथ और वासुपूज्य—ये पाँचों तीर्थकर बाल ब्रह्मचारी माने जाते थे। (आलोच्य संस्करण, पृ० ३८-३९) तीर्थकरों के दीक्षा-स्थान, दीक्षाकाल तथा दीक्षा साधियों के सम्बन्ध में भी आचार्य श्री ने महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्रस्तुत की हैं।

२. करणानुयोग—लोकालोक का विभाग, युग-परिवर्तन की स्थिति तथा चार गतियों का वर्णन करणानुयोग का मुख्य प्रतिपाद्य है—

लोकालोक विभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च ।

आदर्शमिव तथामतिरवैति करणानुयोगं च ॥ (रत्नकरण्ड श्रावकाचार, ४४)

शास्त्रसार समुच्चय में भी इसी शास्त्रीय मर्यादा के अनुरूप तीन लोक, सात नरक, अढाई द्वीप, मनुष्य लोक, छियानवे कुभोग भूमि, वैमनिक देव आदि का वर्णन आया है। करणानुयोग चर्चा से सम्बद्ध प्रारम्भिक सूत्र 'अथ त्रिविधो लोकः' की व्याख्या करते हुए आचार्य श्री कहते हैं "अधोलोक, मध्यलोक, ऊर्ध्वलोक इस प्रकार यह तीन लोक हैं। जिधर देखिए उधर दीखने वाले अनन्त आकाश के बीच अनादि-निधन अकृत्रिम स्वाभाविक नित्य सम्पूर्ण लोक आकाश है, जिसके अन्तर में जीवाजीवादि सम्पूर्ण द्रव्य भरे हुए हैं।" तीनों लोकों से सम्बन्धित जैन मान्यता का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है कि "नीचे सात राजु ऊंचाई वाला 'अधोलोक' है, जिसमें भवनवासी देव और नारकी रहते हैं। द्वीप समुद्र का आधार, महा मेरु के मूलभाग से लेकर ऊर्ध्व भाग तक एक लाख योजन ऊंचा 'मध्यमलोक' है। स्वर्गादि का आधारभूत पंच-चूलिका मूल से लेकर किञ्चित् न्यून सप्त रज्जु ऊंचाई वाला 'ऊर्ध्वलोक' है।" लोकों एवं द्वीपों की जैन देव शास्त्रीय (साइथैलॉजिकल) मान्यताओं को चित्रों द्वारा भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

ऊर्ध्वलोक के विस्तृत विवरण में आचार्य श्री ने विशेष रुचि ली है तथा नक्षत्रों की स्थिति का प्रसंग आने पर ज्योतिषशास्त्र का ही पूरा परिचय दे दिया गया है जो अपने आप में अत्यन्त अद्भुत है। ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान की दृष्टि से 'अवकहड' चक्र, लग्नाधिपति और लग्न प्रमाण घड़ी का कोष्ठक, ६० संवत्सर, ६ ऋतु, १२ मास, २ पक्ष, ३० तिथि, ७ वार, २८ नक्षत्र, २९ योग, ११ करण, ९ ग्रह, पंचांग विधि आदि की चर्चा अत्यन्त उपयोगी कही जा सकती है। ज्योतिष शास्त्र की व्यावहारिक उपादेयता को महत्त्व देते हुए आचार्य श्री ने ग्रहों के शुभाशुभ विचार, गृह प्रवेश, यात्रा, विवाह आदि से सम्बन्धित सिद्ध योगों का भी विशेष विवेचन प्रस्तुत किया है। मुहूर्तचिन्तामणि जैसे प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रन्थों के आधार पर शुभ कार्यों के शुभ योगों को भी स्पष्ट किया गया है। गोचर ग्रह जानने की विधि तथा नव ग्रहों के गोचर फल का संक्षिप्त एवं सारगर्भित विवेचन इस ग्रन्थ की एक उल्लेखनीय विशेषता कही जाए तो अत्युक्ति न होगी।

३. चरणानुयोग—चरणानुयोग का मुख्य प्रयोजन है व्यक्ति को पापाचरण से हटाकर धर्माचरण की ओर उन्मुख करना। शास्त्रीय लक्षणों की दृष्टि से श्रावकों और मुनियों के आचार वर्णन इस अनुयोग के मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैं—

गृहमेध्यनगाराणां चारित्र्योत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गम् ।

चरणानुयोगसमयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति ॥ (रत्नकरण्ड श्रावकाचार, ४५)

शास्त्रसार समुच्चय के तृतीय अध्याय 'चरणानुयोग' में भी पाँच लब्धि, २५ दोष, ११ प्रतिमा, ८ मूलगुण, १२ व्रत, ५ अतिचार, ६ कर्म, मुनियों के भेद, सल्लेखना, यति धर्म, महाव्रत, १२ तप, १० भक्ति, ४ ध्यान, ८ ऋद्धि आदि की विशेष चर्चा आई है।

श्रावक की दृष्टि से आठ मूल गुणों से सम्बद्ध सूत्र 'अष्टौ मूल गुणाः' पर व्याख्यान करते हुए आचार्य श्री ने कहा है कि "जिस प्रकार मूल (जड़) के बिना वृक्ष नहीं ठहर सकता उसी प्रकार गृहस्थ धर्म के जो मूल (जड़) हैं, उनके बिना श्रावक धर्म स्थिर तथा उन्नत नहीं हो सकता। वे मूलगुण आठ हैं। पाँच उदुम्बर फलों का तथा तीन मकार (मद्य, मांस, मधु) के भक्षण का त्याग। ये आठ अभक्ष्य पदार्थों के त्याग रूप ८ मूल गुण हैं।" आठ मूल गुणों के सम्बन्ध में कन्नड टीकाकार का और ही मत रहा था जिसकी ओर संकेत करते हुए आचार्य श्री ने कहा कि कन्नड टीकाकार हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील का आंशिक त्याग तथा परिग्रह परिमाण इन पाँच अणुव्रतों के साथ मद्य, मांस तथा मधु त्याग करना—आठ मूल गुण मानते हैं। इस प्रकार आठ मूल गुणों के सम्बन्ध में जैन आचार्यों के मध्य जो विवाद रहा था उसके

सम्बन्ध में आचार्य श्री ने तथ्यात्मक स्थिति को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—“किसी आचार्य के मतानुसार पूर्वोक्त पांच अणुव्रत तथा मद्य, मांस, मधु का त्याग ये आठ मूल गुण हैं। दूसरे आचार्य के मत में १. मद्यपान त्याग, २. पंच-उदुम्बर फल का त्याग, ३. मांस त्याग, ४. मधुत्याग, ५. जीवों की दया, ६. रात्रि में भोजन न करना, ७. वीतराग भगवान् का दर्शन पूजन, और ८. वस्त्र से छाना हुआ जल पीना, ये आठ मूल-गुण गणधरदेव ने गृहस्थों के बतलाए हैं। इनमें से एक भी मूल गुण कम हो तो गृहस्थ जैन नहीं हो सकता।”

आचार्य श्री ने “दशविधानि वैयावृत्यानि” की व्याख्या करते हुए वैयावृत्य के निम्नलिखित दश भेद गिनाए हैं—(१) आचार्य वैयावृत्य (२) उपाध्याय वैयावृत्य (३) चान्द्रायण आदि व्रतों से कृशकाय तपस्वी मुनियों की वैयावृत्य (४) ज्ञान, चरित्र, शिक्षा आदि में तत्पर शिष्य मुनियों की वैयावृत्य (५) विविध रोगों से पीड़ित मुनियों की वैयावृत्य (६) वृद्ध मुनियों के शिष्यों के गण की वैयावृत्य (७) आचार्य के शिष्य मुनि-कुल की वैयावृत्य (८) चातुर्वर्ण्य संघ की वैयावृत्य (९) नव-दीक्षित साधुओं की वैयावृत्य, एवं (१०) आचार्य आदि में समशील मनोज्ञ मुनियों की वैयावृत्य।

छठवें बाह्य क्रिया-काण्ड के सन्दर्भ में कौन-सी भक्ति कहां करनी चाहिए इसका भी व्यवस्थित विवरण आचार्य श्री द्वारा प्रस्तुत किया गया है। आचार्य श्री ने सामान्य-ज्ञान की दृष्टि से ‘दश-भक्ति’ सन्दर्भ को स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत कर इस ग्रन्थ के गौरव को बढ़ाया है जिसमें १. ईर्यापथशुद्धि, २. श्री सिद्ध भक्ति, ३. श्री श्रुत भक्ति, ४. श्री चारित्र्य भक्ति, ५. योग भक्ति, ६. आचार्य भक्ति, ७. पंचगुरु-भक्ति, ८. तीर्थकर भक्ति, ९. शान्ति भक्ति, १०. समाधि भक्ति, ११. निर्वाण भक्ति, १२. नन्दीश्वर भक्ति, १३. चैत्य भक्ति, १४. चतुर्दिग्बन्दना-प्रकरण जैन भक्ति के स्वरूप एवं इतिहास पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं।

‘अर्ह’ शब्द की व्युत्पत्तिपरक परिभाषा करते हुए कहा गया है कि इसमें ‘अ’ अक्षर परम ज्ञान का वाचक है। ‘र’ अक्षर समस्त लोक के दर्शक का वाचक है। ‘ह’ अक्षर अनन्त बल का सूचक है तथा ‘बिन्दु’ उत्तम सुख का सूचक है—

अकारः परमो बोधो रेफो विश्वावलोककः ।

हकारोऽनन्तवीर्यात्मा बिन्दुस्यादुत्तमं सुखम् ॥ (शास्त्रसार समुच्चय, पृ० २६३)

आचार्य श्री ने इस टीका पर विशेष व्याख्यान देते हुए कहा है कि अर्हत परमेष्ठी, सिद्ध परमेष्ठी तथा आचार्य परमेष्ठी के आदि अक्षर अ + अ + आ मिलकर ‘आ’ बनते हैं जिसमें उपाध्याय परमेष्ठी का आदि अक्षर ‘र’ मिलकर ‘ओ’ बन जाता है। इसमें पांचवें परमेष्ठी मुनि का प्रथमाक्षर ‘म’ मिलकर ‘ओम्’ का निर्माण करता है। इस प्रकार आचार्य श्री ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से ‘ओम्’ को पांच परमेष्ठियों का वाचक पद सिद्ध किया है। ‘आचार्यसूत्र’ की व्याख्या को भी अनेक दृष्टान्तों द्वारा विशद किया गया है। मुनि-आचार्य की महिमा को बताते हुए कहा गया है कि जैसे तपते लोहे के ऊपर यदि थोड़ा-सा जल डाल दिया जाए तो वह उसे तत्क्षण भस्म कर देने के पश्चात् भी गर्म बना रहता है वैसे ही परमतपस्वी गुरु भी अज्ञान का नाश करके अपने ‘स्व’ रूप में स्थित रहते हैं। जैसे एक किसान केवल ‘धान’ की कामना करते हुए धान के साथ-साथ भूसा, पुआल, डंठल आदि अनायास ही प्राप्त कर लेता है वैसे ही भव्य जीव केवल मोक्ष की सिद्धि के लिए प्रयत्नशील रहते हैं, इन्द्र, धरणीन्द्र तथा नरेन्द्रादिक पद तो उन्हें अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। अतएव यति धर्म की अपेक्षा से इन्द्रिय-जन्य सुख क्षणिक और मोक्ष सुख शाश्वत है। इस भावना से सम्यग्दृष्टि सदैव शाश्वत सुख की ही इच्छा करते हैं और निःकांक्ष भावना से आत्मस्वरूप में ही लीन रहते हैं। संक्षेप में शास्त्रसार समुच्चय के चरणानुयोग अध्याय में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज ने श्रावक धर्म और यति धर्म सम्बन्धी उपदेश ज्ञान की जो सरिता बहाई है वह वर्तमान सन्दर्भ में जैन धर्म की प्रभावना को विशेष प्रेरणाशील बनाता है।

४. **द्रव्यानुयोग**—द्रव्यानुयोग एक मोक्षमार्गी अनुयोग है जिसका उद्देश्य तत्त्वसन्धान नय प्रमाणादि के द्वारा जीव, अजीव, पुण्य, पाप, बंध, मोक्ष आदि तत्त्वों की चर्चा करना है—

जीवाजीवसुतत्त्वे पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च ।

द्रव्यानुयोगदीपः श्रुतविद्यालोकमातन्ते ॥ (रत्नकरण्ड श्रावकाचार, ४६)

एक अन्य मान्यता के अनुसार प्रमाणों द्वारा पदार्थों के अस्तित्व को सिद्ध करना भी द्रव्यानुयोग का लक्षण स्वीकार किया गया है। शास्त्रसार समुच्चय के चतुर्थ अध्याय द्रव्यानुयोग के अन्तर्गत ६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय, ७ तत्त्व, ९ पदार्थ, ४ निक्षेप, विविध ज्ञान भेद, सप्तभंग, ५ भाव, ८ कर्म, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि विविध दार्शनिक पक्ष सूत्र-निबद्ध किए गए हैं।

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है ‘द्रव्यानुयोग’ में ‘द्रव्य’ को प्रधानता प्रदान की गई है। सूत्रकार ने “अथ षड् द्रव्यानि” से इस अनुयोग का उपक्रम किया है। आचार्य श्री देशभूषण महाराज ने द्रव्य लक्षण की समीक्षात्मक विवेचना प्रस्तुत की है। “द्रवतोति, द्रव्यम्, द्रवति गच्छति परिणामं इति” पर अपना भाष्य लिखते हुए आचार्य श्री कहते हैं—“अतीत अनन्तकाल में इन्होंने परिणाम किया है और वर्तमान तथा अनागत काल में परिणाम करते हुए भी सत्ता लक्षण वाले हैं तथा रहेंगे। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से युक्त हैं एवं गुण-पर्याय सहित होने के कारण इन्हें द्रव्य कहते हैं। उपर्युक्त तीनों बातों से पृथक् द्रव्य कभी नहीं रहता।”

द्रव्य सम्बन्धी अनेक शंकाओं का निराकरण करते हुए आचार्य श्री कहते हैं, “प्रति समय छह द्रव्यों में जो उत्पाद और व्यय होता

रहता है उसका नाम वर्तना है। यद्यपि सभी द्रव्य अपने-अपने पर्याय रूप से स्वयमेव परिणामन करते रहते हैं किन्तु उनका बाह्य निमित्त काल है। अतः वर्तना को काल का उपकार कहते हैं। अपने निज स्वभाव को न छोड़कर द्रव्यों की पर्यायों को बदलने को परिणाम कहते हैं। जैसे जीव के परिणाम क्रोधादि हैं और पुद्गल के परिणाम रूप रसादि हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान में गमन करने को क्रिया कहते हैं। यह क्रिया जीव और पुद्गल में ही पाई जाती है। जो बहुत समय का होता है उसे 'पर' कहते हैं और जो थोड़े दिनों का होता है उसे 'अपर' कहते हैं।”

‘सप्तभंगी’ सूत्र पर टिप्पणी करते हुए आचार्य श्री ने कहा है “सप्तभंगी की ये सातों भंगें कथंचित् (किसी एक दृष्टिकोण से) की अपेक्षा तो सत्य प्रामाणित होती हैं, इसी कारण इनके साथ ‘स्यात्’ पद लगाया जाता है। यदि इनको ‘स्यात्’ न लगाकर सर्वथा (पूर्णरूप से) माना जावे तो ये भंगें मिथ्या होती हैं।”

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यग्चरित्र ये तीन मोक्ष के कारण हैं जिसे दो प्रकार का कहा जाता है—द्रव्य मोक्ष तथा भाव मोक्ष। घाति कर्मों के क्षय की अपेक्षा अर्हत अवस्था प्राप्त होना द्रव्य मोक्ष है और अनन्त चतुष्टय प्राप्त होकर अर्हत पद प्राप्त करना भाव मोक्ष है। आचार्य श्री ने ‘मोक्ष’ की इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि “कर्म से रहित होना, कर्म-क्षय करना, कर्मों से आत्मा का पृथक् होना अथवा आत्म-स्वरूप की उपलब्धि होना या कृत्स्न (समस्त) कर्मों से मुक्त होना मोक्ष है, यह सब कथन भी एकार्थ वाचक है। इस तरह समस्त पर विजय प्राप्त करना द्रव्य मोक्ष है यही उपादेय है।”

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य माघनन्दि कृत ‘शास्त्रसार समुच्चय’ और उसकी कन्नड़ टीका का आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज द्वारा जो ग्रन्थात्मक प्रस्तुतिकरण किया गया है उसके वे अनुवादक कहे गए हैं। वास्तव में ग्रन्थ का पूरा अवलोकन यदि किया जाए तो आचार्य श्री ने अनुवाद कार्य से भी बहुत आगे बढ़कर ग्रन्थ पर एक स्वतन्त्र निजी भाष्य ही रच डाला है। आचार्य श्री ने अपने सरल उपदेशों, विशेष व्याख्यानों, विविध व्याख्यान शैलियों, गूढ़ शास्त्रीय एवं लाक्षणिक विवेचनाओं तथा चित्रमय प्रारूपों के माध्यम से शास्त्रसार समुच्चय की आड़ में जैन धर्म-दर्शन तथा प्राचीन देव-शास्त्रीय मान्यताओं को आधुनिक शैली में अभिव्यक्ति प्रदान की है। जैन परम्परा और संस्कृति का कोई भी ऐसा पक्ष नहीं रह गया है जो आचार्य श्री द्वारा इस ग्रन्थ में निर्दिष्ट न हो। संक्षेप में ‘शास्त्रसार समुच्चय’ का आचार्य श्री द्वारा प्रस्तुत यह संस्करण जैन धर्म-दर्शन-इतिहास और संस्कृति का एक संक्षिप्त विश्वकोष है—एक ऐसा संग्रहणीय धर्म-कोष जो आधुनिक शैली में जैन धर्मानुप्राणित व्यक्ति को जैन धर्म की प्राचीन परम्पराओं और मान्यताओं से अवगत कराता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के शिल्पवैधानिक वैशिष्ट्य को भी ऐतिहासिक सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए। आचार्य माघनन्दि 13वीं शती के आचार्य माने जाते हैं जब जैन दर्शन ही नहीं बल्कि सभी भारतीय दर्शन मौलिक चिन्तन से बहुत दूर हट चुके थे। समय की आवश्यकता यह बन गई थी कि तब तक जो भी लिखा जा चुका था उसे ही सरल एवं संक्षिप्त शैली में प्रस्तुत किया जाए। प्रकरण ग्रन्थों की रचना इस युग के इसी संक्षिप्तीकरण के मूल्य को लेकर उभरी है। ‘शास्त्रसार समुच्चय’ भी इसी प्रयोजन से लिखा गया ग्रन्थ प्रतीत होता है जिसमें जैन परम्परा के चार अनुयोगों की तात्त्विक स्थिति संक्षेप में प्रस्तुत की गई है। कन्नड़ टीका तथा अन्य संस्कृत टीका इस ग्रन्थ को विशद बनाने के प्रयोजन से लिखी गई हैं। परन्तु आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज ने हिन्दी भाषा को आश्रय बनाकर प्रस्तुत ग्रन्थ पर जो व्याख्या विशेष लिखी है वह पुनः एक ऐसा विरुद्ध प्रयास है जब संक्षिप्त सूत्र ज्ञान को बृहत् की ओर ले जाया गया हो, संक्षिप्त सूत्र की मणियों को जैन श्रुतज्ञान के अपार समुद्र में अभिषिक्त कर दिया गया हो। आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज द्वारा रचित इस शास्त्रसार समुच्चय-भाष्य से ऐसा लगता है कि जैन तत्त्व-चिन्तन आज भी जीवन्त है।

